Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

# गाँधीजी के श्रम व पूँजी संबंधित विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

**डॉ. अजय कुमार**
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, गुरुनानक खालसा कॉलेज, करनाल।

गाँधीजी ने श्रम एवं पूँजी के संबंध से एक नवीन दृष्टिकोण को प्रतिपादन किया। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि श्रम व पूँजी के मध्य कोई नैसर्गिक टकराव नहीं है।[1] उनका स्पष्ट मत था कि उत्पादक की प्रक्रिया में श्रम की निर्णायक महत्ता को स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि वस्तुतः श्रम ही पूँजी को सार्थक बनाता है। गाँधीजी ने कहा कि मेरे मत मे ंतो श्रम ही सच्ची पूँजी है। श्रम ऐसी मुद्रा है जिसे सार्वभौम रूप से चलाया जा सकता है।[2]

उन्होंने कहा– मेरी कल्पना के ग्राम में ग्रामीण व्यक्ति जड़ नहीं होगा–शुद्ध चैतन्य होगा। वह गन्दगी में, अँधेरे कमरे में, पशुवत् जीवन–यापन नहीं करेगा, स्त्री–पुरुष स्वतंत्रता से रहेंगें वहाँ रोग नहीं होगा। न कोई अभाव में जिएगा और न ऐसे आराम में रहेगा। सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी।[3]

गाँधीजी ने एक ऐसी आदर्श ग्रामीण भारतीय अर्थव्यवस्था की कल्पना की जिसके मूल मंत्र होंगे– आत्मनिर्भरता और विकेन्द्रीकरण। इस उत्पादन प्रणाली में पूँजी की तुलना में श्रम की प्रतिष्ठा होगी अतः उत्पादक शोषण को जन्म नहीं देगा। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि लघु व कुटीर उद्योगों पर आधारित अर्थव्यवस्था से उत्पादन मुख्यतः स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होगा। अतः स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपभोग औरर विवेकसम्मत वितरण, अर्थव्यवस्था के निर्देशक सूत्र होंगे।[4]

श्रम की महत्ता को रेखांकित करते हुए गाँधीजी ने कहा– "श्रम पूँजी की तुलना में निश्चित रूप से श्रेष्ठ है, बिना श्रम के सोना चाँदी और तांबा निरर्थक बोझ के समान है। वह श्रम ही है, जो धरती की कोख से बहुमूल्य धातुएँ निकालता है। अतः बहुमूल्य सोना नहीं श्रम है। किन्तु मैं श्रम और पूँजी में टकराव नहीं चाहता, मैं दोनों का विवाह करना चाहता हूँ। वे सहयोग करके चमत्कार कर सकते हैं।[5]

गाँधीजी जिस आदर्श व्यवस्था का प्रतिपादन करना चाहते थे, उसमें उत्पादन प्रक्रिया के विक्रेन्द्रित हो जाने से पूँजी की तुलना में श्रम की निर्विवाद महत्ता स्वतः प्रतिष्ठित हो जाएगी। इस व्यवस्था में उत्पादन के लिए पूँजी पर अधिक निर्भरता या भारी विनियोग की आवश्यकता ही नहीं रहेगी तथा उत्पादन वास्तव में श्रम–प्रधान हो जाएगा। श्रम तथा पूँजी परस्पर अन्तः निर्भर हैं।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

उन्होंने कहा कि – "एक श्रमिक का कौशल उसकी पूँजी है। जिस प्रकार पूँजीपति श्रम के सहयोग के बिना पूँजी को सार्थक नहीं बना सकता, इसी प्रकार श्रमिक भी बिना पूँजी के सहयोग के अपने श्रम को सार्थक नही ंकर सकता, और यदि श्रम और पूँजी स्वयं के पास उपलब्ध क्षमताओं को समान रूप से विकसित कर उनका उपयोग करें तथा एक–दूसरे से अपना प्राप्तव्य प्राप्त करने की क्षमता में विश्वास रखें तो वे एक सामूहिक उपक्रम में एक–दूसरे की समान भागीदारी का आदर करेंगे। इन दोनों के मध्य परस्पर शत्रुता का भाव उचित नहीं है।[6]

श्रमिक और पूँजीपति सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति सचेत रहें तथा उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखें। गाँधीजी के अनुसार श्रमिकों व पूँजीपतियों के इस दृष्टिकोण का परिणाम होगा, "सर्वव्यापी ईमानदारी, सहिष्णुता, पारस्परिक विश्वास और श्रम, पूँजी व उपभोक्ता के मध्य एक स्वैच्छिक और सम्मान जनक साहचर्य।"[7]

संघर्ष की इस पद्धति में पूँजीपतियों को नहीं अपितु पूँजीवाद तथा उसके शोषणकारी स्वरूप को समाप्त करना अभीष्ट होता है तब तक श्रम व पूँजी परस्पर पूरक बने रहते हैं

उन्होंने कहा– "प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का समान अधिकार हो। प्रत्येक अधिकार के साथ कर्त्तव्य और अधिकार पर होने वाले प्रहार के प्रतिरोध के उपाय अनिवार्य रूप से जुड़े होते हैं। अतः कर्त्तव्यों का बोध तथा साथ ही अधिकारों के अतिक्रमण के प्रतिकार के प्रभावशाली उपायों के प्रति चेतना, श्रम व पूँजी के मध्य मौलिक समानता की स्थापना का सुगम सूत्र है। श्रमिक के अधिकारों से जुड़ा कर्त्तव्य है– क्षमता भर परिश्रम करना तथा अधिकारों की रक्षा का उपाय है उन व्यक्तियों व उस व्यवस्था से असहयोग जो श्रमिकों को उसके श्रम के फलों से वंचित करती हो। यदि श्रमिक पूँजीपति व श्रमिक की मौलिक एकता को जान लें तो वे पूँजीपति के विनाश को अपना लक्ष्य नहीं मानेंगे अपितु उसका रूपान्तरण करेंगे। श्रमिक का असहयोग पूँजीपति की आँखें खोल देगा और वह अन्याय कर ही नहीं सकेगा।"[8]

पूँजीवाद की बुराईयों के अहिंसक प्रतिकार के लिए गाँधीजी ने ट्रस्टीशिप सिद्धांत प्रस्तुत किया। ट्रस्टीशिप सिद्धांत का विचार इन्होंने ईशावास्योपनिषद् के उस प्रथम सूत्र से ग्रहण किया जिसमें कहा गया है कि इस संसार में जो कुछ है, वह ईश्वर का है। अतः व्यक्ति को उपलब्ध संसाधनों का त्यागपूर्वक उपयोग करना चाहिए क्योंकि उसके पास उपलब्ध वस्तुओं पर उसका स्वामित्व नहीं है। गाँधीजी ने ईशोपनिषद् के इस आध्यात्मिक विचार को आर्थिक परिवर्तन के विश्वसनीय सिद्धांत के रूप में रूपान्तरित कर दिया।

ट्रस्टीशिप का, विचार इस मूल आस्था पर आधारित है कि व्यक्ति अपने बौद्धिक और शारीरिक श्रम के द्वारा जो उपार्जित करते हैं उस पर उसका स्वामित्व नहीं होता अपितु वे तो, उसके

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

संरक्षक या प्रन्यासी होते हैं। गाँधीजी ने सुझाव दिया कि जिन लोगों के पास धन व सम्पत्ति है, वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् शेष साधनों व सम्पत्ति का सामाजिक हित में प्रयोग करें। इस प्रकार ट्रस्टीशिप का सिद्धांत, स्वैच्छिक आधार पर साधनों के समाज में न्यायसम्मत वितरण को सुनिश्चित करना चाहता है।

गाँधीजी के अनुसार– "प्रन्यास सिद्धांत, यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्ति अपनी दक्षताओं के अधिकतम उपयोग के लिए प्रेरित भी हो, किन्तु उन दक्षताओं के प्रयोग द्वारा उपार्जित सम्पदा का उपयोग स्वयं उसके हित में न होकर पूरे समाज के हित में हो। इस प्रकार प्रन्यास सिद्धांत, सम्पत्ति को अर्जित करने वाले व्यक्ति को उसके प्रबंधन का अधिकार तो देता है, किन्तु उसे यह भी सचेत करता है कि उसके द्वारा अर्जित सम्पत्ति पर स्वामित्व पूरे समाज का है।[9]

ट्रस्टीशिप की धारणा वस्तुतः अपरिग्रह और अस्तेय के विचारों का ही व्यवस्थित रूप है।

ट्रस्टीशिप के विचार में सम्पत्ति के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण की दो मर्यादायें अन्तर्निहित हैं –

प्रथम– व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को यथा संभव सीमित कर ले।

द्वितीय– व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक साधनों व सम्पदा को अपने पास न रखे।

इसका परिणाम यह होगा कि वे सम्पत्ति के उपार्जन से होने वाले मानसिक संतोष को तो अनुभव करेंगे ही, सामुदायिक उपयोग के लिए सम्पत्ति के परित्याग के माध्यम से वे अपना नैतिक कल्याण भी सुनिश्चित करेंगे।

उन्होंने कहा– "मेरा ट्रस्टीशिप का सिद्धांत कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे काम निकालने के लिए आज गढ़ लिया गया हो। अपने मन्तव्य को छिपाने के लिए खड़ा किया गया आचरण तो वह हरगिज़ नहीं है। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धांत जब नहीं रहेंगे तब भी वह रहेगा। उसके पीछे तत्त्व ज्ञान और धर्म के समर्थन का बल है।[10]

अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकरण स्वरूप को अपना लेने के पश्चात् तो किसी व्यक्ति को विपुल मात्रा में सम्पत्ति के उपार्जन का अवसर ही प्राप्त नहीं होगा।

भारतीय संस्कृति में दान को व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए अनिवार्य माना गया है। न्यासिता का विचार तो इस सहज, दान–वृत्ति को, आर्थिक गतिविधियों का प्रेरक नियम बनाकर सहज मानवीय भावना को ही व्यवस्थित रूप प्रदान करता है।

गाँधीजी ने कहा– "सम्पत्ति के वर्तमान स्वामियों को यह अवसर होगा कि वे दो विचारों में से एक का चयन करें या तो स्वेच्छा से स्वयं को सम्पत्ति का प्रन्यासी बना लें या फिर वर्ग संघर्ष का सामना करें।[11]

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

गाँधीजी इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु भौतिक शक्ति की तुलना में एक श्रेष्ठतर और उच्चतर उपाय नैतिक व्यक्ति को प्रयुक्त करना चाहते हैं।

गाँधीजी ने कहा– सम्पत्ति का राज्य के हाथों में स्वामित्व अनियंत्रित, निजी स्वामित्व से बेहतर हो सकता है, किन्तु क्योंकि वह हिंसा पर आधारित है, अतः वह भी आपत्तिजनक है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि राज्य हिंसा के माध्यम से पूँजीवाद का दमन करेगा तो वह स्वयं हिंसा के जाल में फँस जाएगा और किसी भी समय अहिंसा का विकास नही ंकर सकेगा। राज्य संगठित और सकेन्द्रित हिंसा का प्रतीक है। व्यक्ति में आत्मा होती है, किन्तु राज्य एक आत्मा–विहीन यंत्र है, उसे कभी भी हिंसा से विलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका अस्तित्व ही उस पर निर्भर है। इसलिए मैं प्रन्यासिता के सिद्धांत को वरीयता देता हूँ।[12]

गाँधीजी नैतिक आस्थाओं और हृदय परिवर्तन एवं सामुद्रिक तरंग सिद्धांत के माध्यम से स्वदेशी, स्वराज्य व श्रम–पूँजी सिद्धांत को परिलक्षित करते हैं। आर्थिक विचारों की अपनी प्रकृति को 'मानवीय अर्थशास्त्र; की संज्ञा दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि आर्थिक सम्बन्धों में सत्य और अहिंसा की प्रयुक्ति मानवीय अर्थशास्त्र का आधार है।

**संदर्भ –**

1. यंग इंडिया, 8 जनवरी, 1925
2. हरिजन, 16 मार्च, 1947
3. बन्च ऑफ ओल्ड लेटर्स, 1958, पृ. 506–7
4. प्रो. चतुर्वेदी, मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, 1991, पृ. 338
5. हरिजन, 7 सितम्बर, 1947
6. हरिजन, 3 जून, 1934
7. पायनियर, 3 अगस्त 1934
8. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी खण्ड–58, पृ. 339–40
9. यंग इंडिया, 26 नवम्बर, 1931
10. हरिजन, 12 अप्रैल, 1942
11. हरिजन, 16 दिसम्बर, 1937
12. यंग इंडिया, 26 नवम्बर, 1931